प्रवचन नं. ३२ गाथा-८ ता. १२-७-७८ बुधवार अषाढ सुदी-७ सं.२५०४

आंठवी गाथा का भावार्थ है न ? भावार्थ है, पण्डितजी नहीं आये ? (श्रोता :- पण्डितजी भावनगर गये है) भावनगर गये हैं।

क्या कहते हैं ? `**लोग शुद्धनय को नहीं जानते**' अर्थात लोग सामान्यजन व्यवहारी हैं, वह धर्मी पूर्ण शुद्ध चैतन्यधर्मी जो शुद्धनय का विषय वह जानते नहीं, वस्तु जो अखण्ड है, अभेद है, चैतन्यस्वरूप जिसमें पर्याय का भेद भी नहीं, उस चीज को लोग जानते नहीं, `**क्योंकि शुद्धनय का विषय तो अभेद एकरूप वस्तु है,**' शुद्धनय के विषय को नहीं जानते (वह) शुद्धनय को नहीं जानते, क्योंकि शुद्धनय का विषय, अभेद एकरूप वस्तु है, एकरूप, अभेद एकरूप, उसमें पर्याय का भेद नहीं, राग का संबंध नहीं, संयोग का संबंध नहीं। आहा ! (श्रोता :- यह तो त्रिकाल स्वरूप है) ***यह वर्तमान, यह त्रिकाली वस्तु, त्रिकाल कहा जाता है, परंतु वर्तमान में अभेद अखण्ड वस्तु, आहाहा ! एकरूप वस्तु इसप्रकार वर्तमान में। वर्तमान में एकरूप अभेद एकरूप वस्तु उसको तो व्यवहारीजनों (का) अनंतकाल से अभ्यास नहीं अतः जानते नहीं है ? यह अभेद एकरूप वस्तु त्रिकाल, त्रिकाल यह भी एक अपेक्षा लागू परंतु वस्तु है बस, एकरूप सामान्य ध्रुव, आहाहा !***

`**किन्तु वह अशुद्धनय को ही जानते हैं।**' व्यवहारनय को जानते हैं - ऐसा नहीं कहकर अशुद्धनय को जानते है, अशुद्ध नय कहो कि व्यवहार अर्थात क्या कहा ? कि वस्तु जो है एकरूप अभेद अखण्ड, उसका अज्ञानी को अनादि से परिचय नहीं, अभ्यास नहीं, व्यवहारीजन इसको जान सकते नहीं। वे तो अशुद्धनय को जानते है, राग को और भेद को जानते है कि यह ज्ञान सो आत्मा, ज्ञान सो आत्मा, जाने वह आत्मा - ऐसा भेद, भेद करके जानते हैं। समझ में आया ? किन्तु अशुद्धनय को ही जानते हैं - ऐसा लिया, यह तो भेद को ही जानते हैं भेद से अभेद क्या चीज है उसको जानते नहीं। आहाहा !

`**क्योंकि उसका विषय भेदरूप अनेकप्रकार है**' अशुद्धनय का विषय भेदरूप अनेक प्रकार है। देखा ? शुद्धनय का विषय अभेद एकरूप है तो अशुद्धनय का विषय भेद अनेकरूप है। समझ में आता है ? यह विषय सूक्ष्म है।

`**इसलिये व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं**' इस कारण यह अशुद्धनय को अर्थात भेद को जानते हैं अनेक प्रकार हैं, उसको जानते हैं, अभेद

और एकरूप वस्तु को जानते नहीं अनेक प्रकार है उसको जानते है, अभेद और एकरूप वस्तु को जानते नहीं, उसको व्यवहार से (जानते), व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं, भेद द्वारा परमार्थ को समझ सकते है। यह ज्ञान वह आत्मा, दर्शन को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा भेद करके समझ सकते हैं। क्या कहते हैं? कि आत्मा तो अभेद है, वस्तु एक अखण्ड अभेद है, परंतु वह अभेद को जानते नहीं तब उसको समझाया कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो प्राप्त हो (सो आत्मा) भेद से समझाया। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो प्राप्त हो वह आत्मा, समझ में आया? आहाहा ! ऐसी बात है। व्यवहार के द्वारा ***ही, व्यवहार से निश्चय होता है यह प्रश्न यहाँ नहीं, मात्र व्यवहार से भेद से अनेक प्रकार बताने से अभेद एकरूप को जानते है, भेद से अनेक प्रकार से एक चीज को जिसमें भेद नहीं फिर भी भेद बताया कि भाई जो ज्ञान वह आत्मा, ज्ञान को प्राप्त हो वह आत्मा। - ऐसा ज्ञान का भेद करके बताया। तब वह समझें कि हाँ।*** वह जाननेवाला ज्ञान, ज्ञान सो आत्मा, तब व्यवहार के द्वारा, भेद के द्वारा अभेद को समझ सकते हैं, इस कारण व्यवहार से समझाने में आता है। आहाहा ! ऐसी बात है। यह व्यवहार क्या ? ***किसी की दया पाल सकते है और व्रत कर सकते है एवं भक्ति कर सकते हैं - इस व्यवहार द्वारा यह बात यहाँ है नहीं, यहाँ तो एक वस्तु आत्मा अभेद अखण्डतत्त्व है आत्मा, उसमें भेद है नहीं। गुण अनंत हैं, फिर भी अनंत गुणों का रूप अभेद एक चीज है, तो अभेद को अनादि काल के अभ्यास के अभाव में जान सकते नहीं, तब भेद से समझाना पड़े, कि भेद हुआ वह व्यवहार आया,*** भेद के द्वारा व्यवहार के द्वारा कि देखो भाई अंदर आत्मा है न ? वह जानता है न ? जानता है न, ज्ञान वह आत्मा - ऐसा भेद करके व्यवहार कहकर अभेद को बताया, व्यवहार करते-करते अभेद होगा - यह प्रश्न यहाँ है नहीं। व्यवहार आचरण करते निश्चय होगा यह यहाँ प्रश्न है नहीं।

यहाँ तो उसको अभेद चीज को नहीं सकझते, तब भेद द्वारा, उसमें है गुणी में भेद है, परंतु अभेदरूप में है उसमें भेद बताकर जाननेवाला भिन्न बताकरके, पहले तीन भेद लिये थे सातवीं गाथा में, यहाँ एक ज्ञान ही लिया, अब। आहाहा ! समझ में आया ? यह तो वही का वही विषय है उसका विषय तो वही का वही परंतु उन्होंने यह संक्षेप में बताया। यह व्यवहार के द्वारा परमार्थ को कहने में आया, परमार्थ को अर्थात वस्तु जो अखण्ड है अभेद चैतन्यतत्त्व, जिनतत्त्व जो वस्तु अनादि एकरूप वस्तु है उस एकरूप को नहीं जाननेवाले को अनेक नाम गुण आदि भेदों के द्वारा उस अभेद को बताते हैं - ऐसा व्यवहार आये बिना रहता नहीं समझ में

आया ? फिर भी व्यवहार का अनुसरण करने लायक नहीं, गजब भाई यह। आहाहा !

इस गाथा में बड़ा विवाद है, चिमनचक्कु थे उन्होने कहा था, देखो इसमें व्यवहार है, परंतु क्या कहा, व्यवहार से कहां, व्यवहार से तो भेद से समझाना परंतु इसलिये भेद से समझेगा... इसलिये राग की क्रिया करे तो समझेगा - ऐसी यहाँ बात है नहीं, यहाँ तो अखण्ड एकरूप को जो नहीं जानते हैं, तब ज्ञान, यह जानता है न, जाननेवाला गुण है यह ज्ञान एक आत्मा का, यह आत्मा है, राग यह अनात्मा है, शरीर यह अनात्मा है, और ज्ञान यह आत्मा है - ऐसा भेद करके बताया, परंतु बताना अभेद। भेद से बताना (है) अभेद, तब भेद सुनकर भेद का आश्रय लेना नहीं, सुननेवाले को भी भेद से अभेद को जानना, जानना है आहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म मार्ग। यह सामायिक करो और प्रतिक्रमण करो और अमुक करो और भक्ति करो, हो गया लो, आहाहा ! यह तो अनंतबार किया भाई... यह कोई चीज नहीं।

यहाँ व्यवहार द्वारा, गुणी जो एकरूप अभेद है, उसको भेद के द्वारा जानना इतना व्यवहार बीच में आये बिना रहता नहीं। परंतु व्यवहार से जानने में आनेवाली वस्तु तो अभेद है। आहाहा ! व्यवहार, व्यवहार को बताते हैं - ऐसा नहीं व्यवहार बताते है उसको (अभेद को) समझ में आया ? - ऐसा मार्ग अभी तो सम्यग्दर्शन की बात चलती है।

सम्यग्दर्शन जिसको पाना है, उसे भेद से पहले समझाना पड़ेगा, कि देखो भाई ! वस्तु जो त्रिकाली है यह ज्ञान सो 'आत्मा' है दृष्टि वहाँ लगाओ, ज्ञान वह आत्मा है, तब ज्ञान ऊपर दृष्टि लगाओं - ऐसा नहीं, समझ में आया ? आहाहा ! यह जानना जानना जानना जो भाव है, यह आत्मा - ऐसा कहकर तुम्हें लक्ष्य द्रव्य ऊपर जाना चाहिए। ज्ञान से बताया परंतु ज्ञान ऊपर लक्ष्य रखना, इसके लिये बताया नहीं। समझ में आया ? ज्ञान से आत्मा बताया, परंतु जाननेवाले को, ज्ञान में रुकने के लिये बताया - ऐसा नहीं, यह ज्ञान वह आत्मा। आहाहा ! वहाँ जाओ, ऐसे भेद द्वारा अभेद को समझाया, आहाहा ! यह विषय (श्रोता :- बतानेवालों का तो उपकार मानना चाहिए न) यह अन्य बात है - यहाँ तो उसका विकल्प आता है, यह दूसरी बात है। परंतु चीज क्या है, वस्तु जो है वह तो एकरूप अभेद है, तब अभेद को तो समझना किस तरह ? आत्मा अभेद है, आत्मा एक है, पूर्ण है, परंतु वह समझना किस प्रकार ? तब उसको - ऐसा बहुत संक्षेप में कहा जाता है, कि ज्ञान सो आत्मा, समझ में आया ? मूल पाठ में तो तीन लिये हैं, आहाहा ! व्यवहार के द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं। भेद से अर्थात दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त जो हो वह आत्मा... है तो भेद, दर्शन, ज्ञान। राग को प्राप्त होता है कि निमित्त को प्राप्त

होता है यह बात तो यहाँ है नहीं। दर्शन, ज्ञान जिसमें रुचि, ज्ञान और स्थिरता उसको जो प्राप्त करे यह आत्मा। तब भेद से बताया अभेद, भेद ऊपर लक्ष्य कराने नहीं, भेद ऊपर से लक्ष्य छोड़कर अभेद की दृष्टि कराने को। देवीलालजी ! ऐसी वस्तु है।

(श्रोता :- भेद पहचाने तब अभेद पहचाने) यह बात यहाँ है नहीं। भेद पहचानना यह बात यहाँ है नहीं। भेद से अभेद बताना है। ज्ञान सो आत्मा अतः ज्ञान पहले जानना यह तो व्यवहार है यह बाद में आयेगा। परंतु वह व्यवहार किसको ? जो ज्ञान सो आत्मा - ऐसे आत्मा का अनुभव हुआ वह तो परमार्थश्रुतकेवली यह (गाथा) नौ दशमी में आयेगा, और ज्ञान सो आत्मा... यह ज्ञान को जाने यह व्यवहार है, यह व्यवहार श्रुतकेवली है, परंतु वहाँ दृष्टि हुई है उसकी, आहाहा ! बहुत सूक्ष्म बात है।

यहाँ तो अभी आठमी गाथा चलती है न ? आठमी में तीन बोल लिये है न ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र से जो प्राप्त होता है वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा, क्या कहा ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त हो यह आत्मा - ऐसा नहीं कहा परंतु जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है, यह आत्मा। आहाहा ! `को' और `उससे' इतना फर्क दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है यह `जो' दर्शन, ज्ञान, चारित्र... राग को प्राप्त होता है यह बात तो है नहीं दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है `जो' `वह' आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त होता है वह आत्मा - ऐसा नहीं। समझ में आया ? बहुत फर्क पूरब-पश्चिम का फर्क है दोनों में, कल कहा था न रात को ?

वस्तु, राग हो... धर्मी ज्ञानी को भी राग होता है, राग होता है विषय आदि का राग होता है परंतु वह चीज तो दुःखरूप है, ही है, परंतु (साधक को भी) आता है वह तो दूसरी बात है, परंतु यहाँ आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है, जो जो, अर्थात आत्मा। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है तब यह भेद से बताया। आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है यह `आत्मा', `आत्मा' दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त होता है वह आत्मा - ऐसा नहीं। समझ में आया ? (श्रोता :- दर्शन, ज्ञान, चारित्र को आत्मा प्राप्त करता है) यह आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त करता है, पर्याय में वो आता है और पर्याय में यह बताता है द्रव्य को न ! पर्याय ऊपर लक्ष्य करना नहीं। ***कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त हो यह आत्मा, तब तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र का लक्ष्य करें तब यह तो पर्याय का लक्ष्य हुआ।*** समझ में आया ? सूक्ष्मबात है भाई !

यह प्रथम १२ गाथायें तो पीठिका है, सारे (पूरे) समयसार की, यह आत्मा पूर्णानंद एकरूप वस्तु है, न वस्तु, यह तो अभेद एकरूप है उसको नहीं जाननेवाले को इतना भेद बताया कि ***`जो' अर्थात आत्मा, दर्शन-ज्ञान-चारित्र को प्राप्त हो यह***

आत्मा, तब उसका लक्ष्य तो आत्मा पर है, दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हुआ वह आत्मा। चंदुभाई ! आहाहा ! (श्रोता :- जो पर पूरा वजन है) `जो' दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होता है। `जो' वहाँ दृष्टि है। आहाहा ! और जो दर्शन, ज्ञान से प्राप्त होता है - ऐसा नहीं। आहाहा ! तब उसकी दृष्टि पर्याय ऊपर रही। उससे प्राप्त होता है, उससे प्राप्त होता है, और यह तो, `जो' दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हुआ वह आत्मा। समझ में आया ? समयसार गूढ़ वस्तु है। आहाहा !

भेद करके बताया तो इतना कि यह अभेद वस्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त होती है। आहाहा ! यह चीज आत्मा। अति में अति संक्षेप में कहते हैं तब इतना तो कहना पड़ेगा आगे कहेंगे तो इन तीनमें से एक कहेंगे। यहाँ तो तीन कहे है फिर एक कहेंगे। ज्ञान वह आत्मा नौ-दश (गाथा में) आहाहा ! राग होता है, ***समकिति ज्ञानी को भी राग आता है, परंतु है राग दुःखरूप, हेयरूप, आकुलतारूप, उससे आत्मा जानने में आता है, यह तो प्रश्न है ही नहीं और वह दुःख को प्राप्त होता है - यह आत्मा - ऐसा भी नहीं, दुःख अर्थात राग से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा नहीं। परंतु राग को आत्मा प्राप्त होता है - ऐसा आत्मा नहीं।*** समझ में आया ? राग को जो प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा नहीं और राग से प्राप्त हो आत्मा - ऐसा नहीं, अब तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त हो आत्मा - ऐसा नहीं। आहाहाहा ! गजब बात है !

देखो तो वाणी, यह सिद्धांत कहलाते। यह वीतराग की वाणी कहलाती। आहाहा ! दिगम्बर संतों तो केवलज्ञानी के रास्ते चलनेवाले, अकेला केवलज्ञान अकेला है। आहाहा ! कितना स्पष्ट है, कि जो राग को प्राप्त हो वह आत्मा - ऐसा नहीं कहा। नवरंगभाई ! एवं राग से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा भी कहा नहीं। अभी तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा भी कहा नहीं, प्रेमचन्द्रजी। बहुत ध्यान रखने की समझने की यह वस्तु है। आहाहा ! ज्ञानी को राग होता है, परंतु ज्ञानी की दृष्टि द्रव्य ऊपर है बाद में यह सिद्ध करना है समझ में आया ? और अज्ञानी को भी दृष्टि द्रव्य ऊपर लगाना है, यह यहाँ सिद्ध करना है।

भेद करके, कि आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को (प्राप्त हो) `वह' द्रव्य, `जो' वस्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा। तब वहाँ दृष्टि तो द्रव्य ऊपर लगाना है और दर्शन, ज्ञान, चारित्र से प्राप्त आत्मा तब वहाँ दृष्टि दर्शन, ज्ञान, चारित्र (पर्याय) पर जाती है। आहाहा ! समझ में आया ? नवरंगभाई ! क्या कठिन लगा अब इसमें ? पानी छानने का भाव राग है, उसे आत्मा प्राप्त करे यह मना करते हैं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! रतिभाई ! भाई का प्रश्न था पहले ? कहाँ की कहाँ चली गई वस्तु।

आहाहा ! भगवंत तुम क्या हो ? कि मैं तो अभेद, परंतु यह अभेद का जिसको ख्याल नहीं, अभेद का अनुभव नहीं, अभेद तक पहूँच सकते नहीं, उनको क्या करना ? क्या किस तरह समझना ? उसे इसप्रकार समझाना। यह वस्तु जो अभेद है, भेद को प्राप्त होती है, आहाहा ! भेद को प्राप्त होती है। आहाहा ! भेद को प्राप्त होती है, दर्शन, ज्ञान, चारित्र को, भेद से अभेद प्राप्त होता है - ऐसी बात नहीं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा नहीं लिया, मात्र दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो प्राप्त होता है, ***अभेद चीज है यह भेदरूप जो परिणमित होती है। आहाहा ! तब इस परिणमन द्वारा अभेद को बताया। जोर तो वहाँ दिया है, परिणमन द्वारा यह परिणमन करनेवाला 'जो' है यह आत्मा। तब उस आत्मा पर दृष्टि लगाई है, परिणमन करनेवाली वस्तु है वह आत्मा कहें तो पर्याय ऊपर दृष्टि हुई यह आत्मा तो वहाँ है नहीं।*** आहाहा !

अतः व्यवहार को परमार्थ का कहनेवाला जानकर, परमार्थ का कहनेवाला जानकर, परमार्थ को प्राप्त करानेवाला जानकर- ऐसा यहाँ नहीं। आहाहा ! **परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश दिया जाता है।** आहाहा ! दूसरा कोई उपाय नहीं, ***अखण्ड आनंदप्रभु अभेद एकरूप चीज, और जिसकी दृष्टि में अभेद आया है, तब उसमें गुण तो है, परंतु अभेद की दृष्टि में भेद दिखते नहीं, जो अंदर गुण है वह दिखते नहीं - ऐसा कहते हैं, यह भेद तो वर्तमान पर्याय का कहा।*** आहाहा ! पर्याय को प्राप्त हो वो आत्मा, तब वहाँ दृष्टि द्रव्य पर लगी है। आहाहा ! गजब बात है !! एक-एक गाथा एक-एक पद कितनी गंभीरता से भरा है। (श्रोता :- दर्शन, ज्ञान को प्राप्त हो वह आत्मा) ज्ञान को प्राप्त हो यह तो बाद में कहेंगे, यहाँ तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा, बाद में कहेंगे कि ज्ञान वह आत्मा यह बाद में कहेंगे यह भी व्यवहार है। इतना थोड़ा तो व्यवहार आये बिना रहता नहीं। फिर भी व्यवहार अनुसरण करने योग्य नहीं। अनुकरण करने लायक आदरणीय नहीं। आहाहा !

अरे ! चौरासी के अवतार में अनंतकाल से डूब गया है, डूब रहा है, यह दुःख में डूब गया है, उसे दुःख से मुक्त करने के लिये, अभेद को समझाने में... भेद से समझाना इसके अलावा दूसरी चीज आती नहीं, यह भेद तो क्या ? उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र का परिणमन यह भेद, उस परिणमन को प्राप्त हो यह आत्मा। आहाहा ! थोड़ा भी परन्तु परम सत्य होना चाहिए न ! आहाहा !

इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए... क्या कहा कि व्यवहार नय को परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश दिया जाता है। परंतु उसका अर्थ यह समझना

नहीं कि `यहाँ व्यवहार का अवलंबन कराते है' आहाहा ! दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो वह आत्मा, यहाँ दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अवलंबन कराया है - ऐसा नहीं। आहाहा ! (श्रोता :- भेद और अभेद की जाति तो एक है) भेद होने से वस्तु व्यवहार (का विषय) हो गई। ***पर्याय मात्र व्यवहार है, द्रव्य है वह निश्चय है एवं पर्याय है वह व्यवहार (है), चाहे निर्मल पर्याय हो, यह निर्मल पर्याय की बात हो न ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो यह निर्मल पर्याय है।*** आहाहाहा ! (श्रोता :- पर्याय भी निर्मल द्रव्य भी निर्मल जाति एक हो गई) यह बात अभी नहीं। यहाँ तो जानने की बात करना, जो चीज अंदर वस्तु महाप्रभु अनंतगुण की संपदा का महामहल, महल अर्थात महल, मेल नहीं महल, जिस महल में अनंतो वस्तु संपदा स्थित है, जैसे यह महल होता है न, जैसे फर्नीचर, फर्नीचर होता है न ? क्या कहते हैं ? फर्नीचर तब यह आत्मा - ऐसा महल है कि उसमें अनंत (गुणोंका) फर्नीचर स्थित है। अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन - ऐसा अनंतानंत परंतु वह सभी एकरूप में है, द्रव्य से भिन्न है नहीं। अब उसे भिन्न करके बताना, तब नामरूपी कथन करके कथन मात्र से व्यवहार से कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसा उपदेश अतः लोगों को - ऐसा लगे, फिर करना धरना कुछ नहीं और आनंद बहुत है। आगरा में एक पण्डितजी थे, एक घण्टे सुना, बहुत बड़ी सभा थी, पाटनी (जी) के मकान के पीछे जगह थी उसतरफ एक व्याख्यान हुआ (पण्डितजी) खड़े हो गये। बड़े आनंद की बात (है), करना धरना कुछ नहीं ? अरे प्रभु ! ऐसे कहीं ***व्रत करना, भक्ति करना, तप करना कुछ नहीं। अरे भगवान !*** इसकी तो कहीं बात है यहाँ ? जो चीज आत्मा में है नहीं उससे प्राप्त कैसे हो ? ***यहाँ तो उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र, स्वभाव है, तो उसमें भी प्राप्त हो - ऐसा नहीं कहा। परिणति से यह प्राप्त हो - ऐसा नहीं। `जो' परिणति को प्राप्त होता है, यह द्रव्य है।*** आहाहा !

यह तो तीनलोक के नाथ ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग ! एक समय, सेकेण्ड का असंख्यमा भाग उसमें तीन काल एक समय में तीनोंकाल आहाहा ! एवं तीनलोक और अलोक जानते हैं, ऐसे भगवान की यह वाणी है, आहाहा ! बापू यह क्या चीज है भाई ! वह संत भगवान की जो वाणी है - ऐसा कहते हैं कि मार्ग तो ऐसा है, हमने भी ऐसा ही जाना है, वस्तु ऐसी है। आहाहा ! कहीं फुरसत नहीं, धंधे के कारण फुरसत नहीं, धर्म के नाम पर करे तो गजरथ चलाओ एवं मंदिर (बनाओ) एवं... आहा ! पच्चीस पच्चीस हजार व्यक्ति, एक-एक हजार व्यक्तियों के बीच बैंड़-वाजा, रथ निकलता न ? हमारा रथ निकला था न वहाँ जयपुर (में)

चालीस हजार व्यक्ति साथ में, हम थे तब २१ हाथी तो सामने थे, इक्कीस हाथी, हजार-हजार आदमी के बीच एक बैंड़ क्योंकि लोगों को सुनाई दे ऐसे हजार आदमी हों परंतु यह तो। बापू ! यह तो बाहर की प्रवृत्ति है, यह कहीं आत्मा से होती है, और आत्मा करता है तो होती है - ऐसा है नहीं। आहाहा ! उसमें लक्ष्य है किसी का तो शुभ भाव है इस शुभ भाव से आत्मा प्राप्त हो - ऐसा (भी) नहीं। आहाहा !

यहाँ तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र से भी आत्मा प्राप्त हो - ऐसा यहाँ नहीं कहा। क्योंकि - ऐसा कहने से उसका जोर पर्याय पर जाएगा। जो वस्तु दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमित है वह आत्मद्रव्य है। आहाहा ! मार्ग में बहुत बदलाव हो गया है, वीतराग मार्ग यह जैनदर्शन सनातन। जैनदर्शन तो यह है। व्यवहार का अवलम्बन कराते हैं - ऐसा नहीं समझना। यहाँ - ऐसा कह कर व्यवहार द्वारा ही परमार्थ को समझ सकते हैं इसलिये व्यवहार को परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश किया जाता है।

इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि यहाँ व्यवहार का अवलम्बन कराया, प्रत्युत व्यवहार का अवलम्बन छुडाकर परमार्थ में पहुंचाते है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो यह आत्मा, तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र का अवलम्बन लेना है - ऐसा नहीं, यह जो वस्तु उसको प्राप्त होती है इस वस्तु का अवलम्बन है। आहाहा ! अनंत अनंत काल गया, अनंत अनंत काल, शास्त्र तो कहते हैं कि कोई राग संबंधी दोष हो, तो भी उसके ज्ञान में है, तब वह राग छोड़ेगा और स्थिर होगा, परंतु जिसको अभी राग क्या, आत्मा क्या, पर्याय क्या, इसकी तो अभी खबर नहीं... आहाहा ! यह तो दर्शन भ्रष्ट है, दर्शन भ्रष्ट, ज्ञान भ्रष्ट, चारित्र भ्रष्ट। चारित्र भ्रष्ट है यह मुक्ति जायेगा, दर्शन भ्रष्ट नहीं जायेगा। आहाहा !

दर्शनपाहुड़ की गाथा है अष्टपाहुड़ में '**दंसण भट्टा न सिझ्झंति, चरित्र भट्टा सिझ्झंति**' चारित्र का दोष होगा राग का तो उसको ख्याल है कि यह मेरी कमजोरी है, तब वह भी छोड़कर सिद्ध होगा परंतु (यदि) दर्शन भ्रष्ट है, जिसको अभी प्रतीति का पता नहीं। आहाहा ! वह तो ज्ञान से भ्रष्ट और चारित्र से भ्रष्ट तीनों से भ्रष्ट है। समझ में आया ? तब यह दर्शन क्या चीज है, उसकी अभी खबर नहीं। आहाहाहा ! और वह दर्शन कैसे प्राप्त हो, इसकी भी खबर नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? तब यहाँ व्यवहार का उपदेश देना - ऐसा कह दिया जाता है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि व्यवहार का अवलम्बन कराते हैं पर्याय का अवलम्बन कराते है - ऐसा नहीं। आहाहा ! 'प्रत्युत' परंतु व्यवहार का अवलम्बन छुड़ाकर परमार्थ में पहुंचाते है।

आहाहा !

दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, यह आत्मा - ऐसा कहकर पर्याय-भेद से बताया परंतु भेद, अभेद को बताते हैं, अभेद की दृष्टि कराना है। आहाहा ! इसके बिना उसको सम्यग्दर्शन होगा नहीं, उसके बिना जन्म-मरण का अंत आयेगा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? '**व्यवहार का अवलम्बन छुड़ाकर परमार्थ में पहुंचाते हैं**' यह समझना चाहिए। भेद से बताया, परंतु भेद का अवलम्बन करना - ऐसा नहीं बताया। (श्रोता :- छुड़ाया है यह तो) छुड़ाया है वह तो। आहाहा ! आठवीं गाथा हुई।

गाथा - ९, १०

कथं व्यवहारस्य प्रतिपादकत्वमिति चेत् -

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।।९।।

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।१०।।जुम्मं।।

यो हि श्रुतेनाभिगच्छति आत्मानमिमं तु केवलं शुद्धम्।
तं श्रुतकेवलिनमृषयो भणंति लोकप्रदीपकराः।।९।।

यः श्रुतज्ञानं सर्वं जानाति श्रुतकेवलिनं तमाहुर्जिनाः।
ज्ञानमात्मा सर्वं यस्माच्छ्रुतकेवली तस्मात्।।१०।।युग्मम्।।

अब, प्रश्न यह होता है कि व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है ? इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं :-

इस आत्म को श्रुत से नियत, जो शुद्ध केवल जानते।
ऋषिगण प्रकाशक लोकके, श्रुतकेवली उसको कहें।।९।।

श्रुतज्ञान सब जानें जु, जिन श्रुतकेवली उसको कहे।
सब ज्ञान सो आत्मा हि है, श्रुतकेवली उससे बने।।१०।।

गाथार्थ :- [यः] जो जीव [हि] निश्चय से (वास्तव में) [श्रुतेन तु] श्रुतज्ञान के द्वारा [इमं] इस अनुभवगोचर [केवलं शुद्धम्] केवल एक शुद्ध [आत्मानं] आत्मा को [अभिगच्छति] सम्मुख होकर जानता है, [तं] उसे [लोकप्रदीपकराः] लोक को प्रगट जाननेवाले [ऋषयः] ऋषीश्वर [श्रुतकेवलिनं] श्रुतकेवली [भणंति] कहते हैं; [यः] जो जीव [सर्वं] सर्व [श्रुतज्ञानं] श्रुतज्ञान को [जानाति] जानता है [तं] उसे [जिनाः] जिनदेव [श्रुतकेवलिनं] श्रुतकेवली [आहुः] कहते हैं, [यस्मात्] क्योंकि [ज्ञानं सर्वं] ज्ञान सब [आत्मा] आत्मा ही है [तस्मात्] इसलिये [श्रुतकेवली] (वह जीव) श्रुतकेवली है।

टीका :- प्रथम, `जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं' वह तो परमार्थ है; और `जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं' यह व्यवहार है। यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते हैं - उपरोक्त सर्व ज्ञान आत्मा है या अनात्मा ? यदि अनात्मा का पक्ष लिया जाये तो वह ठीक नहीं है, क्योंकि जो समस्त जड़रूप अनात्मा आकाशादिक पाँच द्रव्य हैं, उनका ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता ही नहीं (क्योंकि उनमें ज्ञान सिद्ध नहीं है)। इसलिये अन्य पक्ष का अभाव होने से `ज्ञान आत्मा ही है' यह पक्ष सिद्ध हुआ। इसलिये श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है। - ऐसा होने से `जो आत्मा को जानता है, वह श्रुतकेवली' - ऐसा ही घटित होता है; और वह तो परमार्थ ही है। इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार है उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है, उससे भिन्न कुछ नहीं कहा जाता और `जो श्रुत से केवल शुद्ध आत्मा को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं,' इसप्रकार परमार्थ का प्रतिपादन करना अशक्य होने से, `जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं वे श्रुतकेवली हैं' - ऐसा व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादकत्व से अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है।

भावार्थ :- जो शास्त्रज्ञान से अभेदरूप ज्ञायकमात्र शुद्ध आत्मा को जानता है वह श्रुतकेवली है, यह तो परमार्थ (निश्चय कथन) है और जो सर्व शास्त्रज्ञान को जानता है, उसने भी ज्ञान को जानने से आत्मा को ही जाना है, क्योंकि जो ज्ञान है वह आत्मा ही है; इसलिये ज्ञान-ज्ञानी के भेद को कहनेवाला जो व्यवहार उसने भी परमार्थ ही कहा है, अन्य कुछ नहीं कहा और परमार्थ का विषय तो कथंचित वचनगोचर भी नहीं है, इसलिये व्यवहारनय ही आत्मा को प्रगटरूप से कहता है - ऐसा जानना चाहिये।

गाथा - ९, १० पर प्रवचन

आगे प्रश्न होता है कि व्यवहारनय परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है ? कहते हो व्यवहार और परमार्थ का कहनेवाला कहते हो, छोड़ने लायक कहते हो और छोड़ने लायक चीज परमार्थ को बताती है - ऐसा कहते हो। आहाहा ! है ? यह प्रश्न अंदर है।

`कथं व्यवहारस्य प्रतिपादकत्वमिति चेत्' संस्कृत है संस्कृत है।

प्रश्न यह होता है कि व्यवहार नय... पर्याय से, भेद से द्रव्य को बताया- ऐसा व्यवहारनय परमार्थ को बताता है, तब परमार्थ का प्रतिपादक कैसे है ? परमार्थ का

कहनेवाला किसप्रकार है वह ? उसके उत्तर स्वरूप क्या कहते हैं ? जिसके हृदय में - ऐसा प्रश्न उठा ख्याल में आया, तुमने व्यवहार को परमार्थ का कहनेवाला कहा तब यह क्या है ? किस तरह ? परमार्थ को कहनेवाला व्यवहार, जो व्यवहार छोड़ने लायक है, अनुकरण लायक नहीं, वह परमार्थ को कहनेवाला है ? - ऐसा जिसको अंतर में जिज्ञासा से प्रश्न उठा है, उसको उत्तर देने में आता है। समझ में आया ? जिसको यह समझकर अंदर से प्रश्न उठा कि व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादन करनेवाला कैसे ? व्यवहार से परमार्थ होता है यह बात नहीं परंतु व्यवहार परमार्थ को कहनेवाला है, यह कैसे ? आहाहा !

इसमें ऐसी भूल करते है सभी, देखो व्यवहार से परमार्थ प्राप्त होता है। इसने क्या कहा ? व्यवहार तो बताते है परमार्थ को, व्यवहार व्यवहार को बताते हैं यह बात नहीं। आहाहा ! व्यवहारनय व्यवहार का लक्ष्य कराता है - ऐसा नहीं, परमार्थ को कहनेवाला है यह कैसे है ? उसका उत्तर !

जो हि सुदेणहिगच्छदि अप्पाणमिणं तु केवलं सुद्धं।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोयप्पदीवयरा।।९।।

जो सुदणाणं सव्वं जाणदि सुदकेवलिं तमाहु जिणा।
णाणं अप्पा सव्वं जम्हा सुदकेवली तम्हा।।१०।।जुम्मं।।

इस आत्म को श्रुत से नियत, जो शुद्ध केवल जानते।
ऋषिगण प्रकाशक लोकके, श्रुतकेवली उसको कहें।।९।।

श्रुतज्ञान सब जानें जु, जिन श्रुतकेवली उसको कहे।
सब ज्ञान सो आत्मा हि है, श्रुतकेवली उससे बने।।१०।।

गाथार्थ लेते हैं। जो जीव निश्चय से खरेखर वास्तव में, अर्थात यथार्थ श्रुतज्ञान के द्वारा, भावार्थ में तो - ऐसा लेंगें साधारण भाई भावार्थ में, शास्त्रज्ञान से - ऐसा लिखा है, भाई भावार्थ में, परंतु - ऐसा नहीं यहाँ तो भावश्रुत ज्ञान से सीधा आत्मा को जानते हैं। फिर शास्त्र ज्ञान आदि ग्रहण करना।

जो जीव वास्तव में, खरेखर भावश्रुतज्ञान के द्वारा, श्रुत तो निमित्त है परंतु भावश्रुतज्ञान जो हुआ अपनी आत्मा को ग्रहण करने लायक, भावश्रुतज्ञान हुआ। आहाहा ! इस श्रुत के द्वारा अनुभव गोचर, अनुभव गम्य, केवल शुद्धम् केवल एक शुद्ध, एक शुद्ध आत्मा भावश्रुतज्ञान द्वारा, द्रव्यश्रुत तो निमित्त है, परंतु अंदर भावश्रुतज्ञान द्वारा `सुयेण अभिगच्छई' जो अपने आत्मा के सन्मुख होकर अभि अर्थात समस्त प्रकार से अनुभव

करता है, भावश्रुतज्ञान द्वारा वस्तु के सन्मुख होकर समस्त प्रकार से अनुभव करता है। आहाहा ! क्या कहते हैं ? वस्तु जो है वस्तु, अनंतगुणरूप अभेद वस्तु (आत्मद्रव्य) वह जो भावश्रुतज्ञान द्वारा सीधा अनुभव करते हैं... यह तो निश्चय श्रुतकेवली है, है ?

केवल एक, केवल शुद्धम् है, न ? केवल का अर्थ एक शुद्ध, आहा ! श्रुतज्ञान के द्वारा यह अनुभव गोचर... अनुभव गोचर, अनुभव गम्य केवल एक शुद्धात्मा को अभिगच्छति सन्मुख होकर जानता है। अंर्तमुख होकर (आहा) अंर्तमुख होकर, भावश्रुतज्ञान द्वारा अंर्तमुख होकर जो कोई आत्मा को केवल शुद्धम् एक शुद्धरूप वस्तु... आहाहा ! एकरूप शुद्ध उसको भावश्रुतज्ञान द्वारा जानता है उसे `लोक प्रदीपकरः' लोक को प्रगट जाननेवाले संत मुनियों, श्रुतकेवली कहते हैं। यह श्रुतकेवली का अर्थ, कोई विशेष ज्ञान हो गया है, उसकी यहाँ बात नहीं। आहाहा ! जिसने भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा (जाना), द्रव्यश्रुत में वो कहा है - ऐसा भावश्रुत (ज्ञान) हुआ है और भावश्रुत द्वारा भगवान पूर्णानंद आत्मा को सन्मुख होकर समस्त प्रकार से, सभी तरह से, चारों तरफ से आत्मा को अनुभवते हैं। आहाहा ! ऐसे अनुभवी जीवों को `ऋषीश्वर' लोक को जाननेवाले तीनकाल, तीनलोक को जाननेवाले केवलियों अथवा ऋषीश्वर संत उन्हें निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

भावश्रुतज्ञान द्वारा जानने में आया न इतना ? इसके द्वारा का अर्थ यह है कि साथ इसप्रकार सीधा जानते है भावश्रुत से जानते है न ? भावश्रुत से जानते है न ? उनके अंदर में भेद नहीं परंतु यहाँ समझाने में क्या करें ? यह भावश्रुत यह है और मैं उसको जानता हूँ - ऐसा उसमें भेद नहीं। परंतु समझाने क्या करें ? आहाहाहा ! यहाँ भावार्थ में शास्त्र-ज्ञान द्वारा कहेंगे, उसका अर्थ यह है कि शास्त्र का ज्ञान यह - ऐसा कहते हैं, शास्त्र के तात्पर्य में यह कहते हैं कि तुम्हारा श्रुतज्ञान (का) जो भाव है यह वीतरागी पर्याय है, उसका भावश्रुत के द्वारा आत्मा का अनुभव करते हैं। भावश्रुत द्वारा अनुभव करते हैं आत्मा का। समझ में आया ? (श्रोता :- द्रव्यश्रुत द्वारा नहीं करते, करते भावश्रुत द्वारा करते हैं) भावश्रुत, द्रव्यश्रुत नहीं, द्रव्यश्रुत तो बाह्य निमित्त है, यह वस्तु थोड़ी ली है, द्रव्यश्रुत में - ऐसा कहा है द्रव्यश्रुत में भी - ऐसा कहा है, अपदेश संतमझ्झम्, आया न ? अपदेशसंत मझ्झम्।

पन्द्रहमी गाथा में, मतभेद है न, वे कहते हैं कि `अपदेश' अर्थात अखण्ड प्रदेश ! - ऐसा नहीं है। वे बाहर में बहुत भाषण करते है, अपदेश का अर्थ अभी नया किया। श्रुतज्ञान से ! यहाँ, अपदेश का अर्थ अखण्ड प्रदेश ऐसी बात है नहीं। अपदेश का अर्थ कथन है, यह जयसेनाचार्य की टीका में लिया है, पन्द्रहवीं गाथा में, अपदेश अर्थात कथन ! श्रुत, द्रव्य श्रुत में भी यह कहा है कि आत्मा को अबद्ध स्पष्ट

देखे वह समकिति है न वह जिनशासन का जाननेवाला है, इसीप्रकार द्रव्यश्रुत में भी - ऐसा कहा है, और भावश्रुत द्वारा भी यही जानते हैं। भावश्रुत द्वारा भी अबद्धस्पष्ट आत्मा को जानते हैं यह जैनशासन को जानते हैं। आहाहा !

अन्जान (व्यक्ति) को तो - ऐसा लगे कि यह किस जाति की बात होगी। अपने को तो भक्ति करना, हमेशा देव दर्शन करना, साधुओं को आहार देना (साधर्मी को) भोजन कराना। आहाहा ! अरे यह चीज ही नहीं भाई ! यह चीज तो अंदर भगवान आत्मा द्रव्यश्रुत में भी यह कहा कि द्रव्यश्रुत का सार तो वीतरागता है, चारों अनुयोंगों का और भावश्रुतज्ञान यह वीतरागी पर्याय है, आहाहा ! श्रुतज्ञान भी वीतरागी पर्याय है, यह भावश्रुतज्ञान द्वारा आत्मा का अनुभव करते है, यह समकिति श्रुतकेवली है, उन्होंने सब शास्त्रों का सार जान लिया है। आहाहा ! समझ में आया ? (श्रोता :- श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को जाने यह निश्चय श्रुतकेवली) निश्चय श्रुतकेवली वस्तु-वस्तु जाने यह लोक को प्रगट जाननेवाले केवली अथवा संत निश्चय से उसे श्रुतकेवली कहते हैं। आहाहा !

जो जीव सर्व श्रुतज्ञान को जानता है, ज्ञान को जानते है, ज्ञान ऊपर लक्ष्य है भावश्रुत हाँ ! आहाहा ! भावश्रुतज्ञान को जानते हैं ! आहाहा ! जानता है उसे जिनदेव... लो यहाँ जिनदेव कहें वहाँ लोक प्रदीपकर कहा यह तो उसका अर्थ है, उसको जिनदेव श्रुतकेवली कहते हैं व्यवहार (से) वहाँ व्यवहार लेना, इस ज्ञान को भावज्ञान हो ! जाना वह व्यवहार श्रुतकेवली है। परंतु इस श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा जाना यह निश्चय श्रुतकेवली है, इतना भेद बताया, समझ में आया ?

(श्रोता :- ***ऐसा नहीं लेना कि बारह अंग को जाने वह व्यवहार श्रुतकेवली ?) यह यहाँ ज्ञान में जो ज्ञान है इस ज्ञान को ही सर्व ज्ञान कहने में आया है, चाहे थोड़ा ज्ञान हो परंतु सर्वज्ञान, सभी को जाने, पूर्ण को जाननेवाला ज्ञान तो ज्ञान को ही सर्वज्ञान कहा। यह ज्ञान भी व्यवहार (से) श्रुतकेवली है, संपूर्ण जाना उसको व्यवहार से भी (कहा) क्योंकि, जानना तो आत्मा को (था) उसे वह ज्ञान को जाने यह व्यवहार है, ज्ञान आत्मा को जाने यह निश्चय है इतना भेद है।*** आहाहा !

श्रुतकेवली कहते हैं ? क्योंकि जो ज्ञान सब आत्मा है। यह सभी ज्ञान ही है चाहे थोड़ा हो परंतु यह सब ज्ञान, यह आत्मा है, ज्ञान यह आत्मा है - ऐसा बताना है न ? आहाहा ! क्योंकि ज्ञान सब, `सब' शब्द लिखा है न ? ***भले वह ज्ञान थोड़ा हो भावश्रुत, परंतु उससे सारा आत्मा जानने में आता है, इसकारण थोड़े श्रुतज्ञान को भी सब श्रुतज्ञान कहा (है), समझ में आया ?*** क्या कहा ? कि पहले तो जो अपना भावश्रुतज्ञान द्वारा अपने आत्मा को जाना, मूल तो यह जानो उसको केवली

ऋषीश्वर निश्चय परमार्थ केवली है, परमार्थ श्रुतकेवली - ऐसा कहा। परंतु उनकी जो जाननेरूप पर्याय है, और जानने की पर्याय में तो सर्व पूर्ण यही जानने में आता है - ऐसे ज्ञान को ही सारे ज्ञान को ही द्रव्यश्रुतकेवली... उन्हें व्यवहार श्रुतकेवली कहा जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? आहाहा !

यह 'सब' कहा न कि संपूर्ण को जानना है तथा भले यह ज्ञान अल्प हो परंतु यह सब ज्ञान ही है, ज्ञान सब, यह ज्ञान को सभी को जाने यह व्यवहार श्रुतकेवली और ज्ञान से आत्मा को जाने यह निश्चय श्रुतकेवली है, उसमें ही उसमें दो (भेद) है। आहाहा !

यहाँ तो शुभराग करें तो यह व्यवहार है - ऐसा कहा ही नहीं, जो ज्ञान पूरी अखण्ड आत्मा को जानने की ताकात रखता है, उस ज्ञान को ही 'सब' ज्ञान कहा, समझ में आया ? आहाहा ! क्योंकि ज्ञान सब आत्मा ही है, इसलिये यह जीव व्यवहार श्रुतकेवली है, उस जीव को श्रुतकेवली कहना, ज्ञान को जानते हैं, ज्ञान में सारा आत्मा जानने की वस्तु है यह ज्ञान को जानते हैं यह व्यवहार श्रुतकेवली और ज्ञान से भगवान को (निजात्मा को) जाने यह निश्चय श्रुतकेवली... उसकी टीका चलेगी। आहाहा ! - प्रमाण वचन गुरुदेव !